बिज़नेस स्टैंडर्ड
वर्ष 12 अंक 269

बैंकों को करें दुरुस्त

बैंकिंग क्षेत्र में चुनौतियां बरकरार रहने के बावजूद हालात में बदलाव के संकेत दिख रहे हैं। रिजर्व बैंक (आरबीआई) की तरफ से जारी नवीनतम वित्तीय स्थिरता रिपोर्ट (एफएसआर) में कहा गया है कि अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों की सकल गैर-निष्पादित आस्तियां (जीएनपीए) सितंबर 2019 के 9.3 फीसदी से बढ़कर सितंबर 2020 में 9.9 फीसदी के स्तर तक जा सकती हैं। वृहद-आर्थिक हालात में बदलाव, फिसलन में बेहद कम बढ़त और गिरती ऋण वृद्धि इसकी बड़ी वजह है। सुस्त आर्थिक वृद्धि बैंकिंग एवं गैर-बैंकिंग वित्तीय क्षेत्र (एनबीएफसी) के लिए जोखिम पैदा करती है। भारतीय अर्थव्यवस्था में नॉमिनल वृद्धि चालू वित्त वर्ष की दूसरी तिमाही में गिरकर 6.1 फीसदी रही है जो करीब दो दशकों में सबसे कम है। नॉमिनल वृद्धि कम होने से कारोबारों के राजस्व पर असर पड़ेगा जिससे सेवा क्षेत्र को ऋण बांटने की उनकी क्षमता प्रभावित होगी।

एनपीए के अलावा वृहद-आर्थिक एवं नीतिगत पर्यावरण खासकर सार्वजनिक बैंकों के लिए हालात को मुश्किल बना सकता है। ऋण वृद्धि अब जमा वृद्धि को पीछे खींच रही है। जहां बैंकिंग प्रणाली का एक हिस्सा अपने बहीखाते के विस्तार की हैसियत में नहीं हैं वहीं भारतीय कंपनियां तेजी से विदेशी उधारी ले रही हैं। इस समाचारपत्र में प्रकाशित एक रिपोर्ट में कहा गया है कि डॉलर बॉन्ड के जरिये फंड का उठान 2019 में पांच गुना बढ़कर 23.6 अरब डॉलर हो गया। उन्नत अर्थव्यवस्थाओं में मौद्रिक नीति समायोजन ने वैश्विक वित्तीय बाजारों में हालात को थोड़ा सरल बनाया है। भारतीय बैंकिंग प्रणाली में हस्तांतरण की अपेक्षाकृत सुस्त रफ्तार ने आरबीआई की कम ब्याज दरों का फायदा कंपनियों तक नहीं पहुंचने दिया है और बाह्य उधारी को अधिक आकर्षक भी बना दिया है। विदेशी मुद्रा उधारी में तेजी बैंकिंग प्रणाली को प्रभावित करने के अलावा आरबीआई के लिए नीतिगत दरों के प्रबंधन को भी जटिल बना सकती है।

भले ही वृहद-आर्थिक हालात अनुकूल नहीं हैं लेकिन बैंकिंग एवं वित्तीय प्रणाली का लचीलापन बढ़ाने के लिए एक बढ़िया कदम उठाया जा सकता है। आरबीआई गवर्नर शक्तिकांत दास ने एफएसआर रिपोर्ट की भूमिका में निजी बैंकों समेत बैंकिंग क्षेत्र के बेहतर संचालन की जरूरत पर बल दिया है। समूची ऋण बाजार पारिस्थितिकी में कामकाजी मानकों की समीक्षा की जरूरत है। मसलन, वित्तीय स्थिरता बोर्ड ने भी कहा है कि क्रेडिट रेटिंग एजेंसियों ने लिखित समझौतों के बगैर निर्देशात्मक रेटिंग दी थी। रेटिंग एजेंसियों ने इन निर्देशात्मक रेटिंग की जानकारी नहीं दी है लिहाजा रेटिंग खरीद की आशंका का पता लगा पाना मुश्किल है। हालांकि एक एजेंसी के रेटिंग वापस लेने और दूसरी एजेंसी से रेटिंग देने की प्रवृत्ति रेटिंग की खरीद की संभावना का संकेत देती है। इसकी वजह यह है कि नई रेटिंग भी अक्सर पुरानी रेटिंग के समान या उससे बेहतर होती है। ऋण आवंटन में रेटिंग की भूमिका अहम होने से रेटिंग एजेंसियों द्वारा समझौतापरक मूल्यांकन करने से उधार देने के फैसले प्रभावित हो सकते हैं। सेबी ने हाल ही में आईएलऐंडएफएस मामले में रेटिंग एजेंसियों पर जुर्माना लगाया है। यह कदम नियम अनुपालन की अहमियत के बारे में ठोस संदेश देने में मददगार होगा। फिर भी, रेटिंग एजेंसियां इस पारिस्थितिकी का ही हिस्सा हैं। एक हद तक बैंकिंग प्रणाली की सेहत सरकार और खुद केंद्रीय बैंक पर भी निर्भर करती है। आरबीआई बैंकों एवं एनबीएफसी के कई मामलों में परिचालन की नाकामी का अंदाजा लगा पाने में नाकाम रहा है। यहां हमें आईएलऐंडएफएस मामले को याद करना चाहिए। बैंकिंग नियामक की निगरानी क्षमता में सुधार से वित्तीय स्थिरता बढ़ेगी। वहीं सरकार को सक्षमता बढ़ाने के लिए सार्वजनिक बैंकों में कामकाजी सुधार लाने की जरूरत है ताकि वे वित्तीय प्रणाली और समग्र आर्थिक वृद्धि में अवरोध न बने।

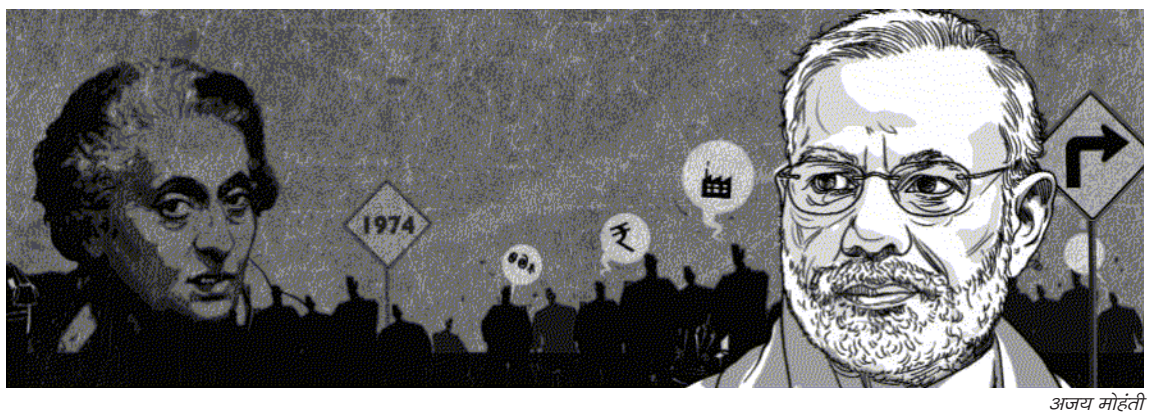

अजय मोहंती

अतीत की खतरनाक राह पर लौटता भारत

इतिहास खुद को दोहरा रहा है और 1974 के दिनों जैसा अहसास हो रहा है। मगर मोदी के लिए इंदिरा गांधी सरीखे काम करना आसान नहीं है क्योंकि भारत एकदम अलग परिस्थितियों में जी रहा है

राष्ट्र की बात

शेखर गुप्ता

एक के बाद एक बिगड़ते आर्थिक सूचकांकों के बीच यह बात साफ नजर आती है कि आज बेरोजगारी 45 साल के सबसे भीषण स्तर पर है। बेरोजगारी का यह हाल हमें सीधे 1974 में ले जाता है।

उस वक्त इंदिरा गांधी लोकप्रिय थीं, लेकिन धीरे-धीरे उनसे मोहभंग हो रहा था। फिर भी निराश मतदाताओं को यही लगता था कि दूसरा कोई विकल्प ही नहीं है। सभी आर्थिक सूचकांक लुढ़क रहे थे, मुद्रास्फीति 35 फीसदी पर थी फिर भी राष्ट्रवाद चरम पर था।

यह सब जाना पहचाना लग रहा है न? मुद्रास्फीति यानी महंगाई को छोड़ दें तो आज बाकी सब कुछ 1974 जैसा ही लग रहा है। निष्ठावान अनुयायियों वाली पार्टी का जबरदस्त लोकप्रियता वाला नेता, बिखरा हुआ विपक्ष, राष्ट्रवादी उफान और ढहती अर्थव्यवस्था, बढ़ती बेरोजगारी। भारत विरोधाभासों की धरती भर नहीं है। यह तो एक ही पीढ़ी के भीतर दो एकदम विपरीत विचारधाओं के अंतर्गत एक ही जैसा बड़ा विरोधाभास पैदा करके भी दिखा सकता है।

थोड़ा और पीछे, 1971 में चलते हैं। इंदिरा गांधी ने उसी साल कांग्रेस के दोफाड़ किए और विपक्षी पार्टियों के एकजुट होने के बाद भी कांग्रेस के दूसरे खेमे के पुराने कद्दावरों को हराकर प्रसिद्ध चुनाव जीता।

1971 के आरंभ में उन्होंने 'गरीबी हटाओ' का जनवादी नारा दिया। साल बीतते-बीतते वह पाकिस्तान को हटाकर और दो टुकड़ों में बांटकर 'मां दुर्गा' का अवतार बन चुकी थीं। वह चमत्कारी बन चुकी थीं।

लेकिन समाजवाद और राष्ट्रवाद का यह दोहरा मुलम्मा भारत के विद्रूप यथार्थ को ढक रहा था। राष्ट्रीयकरण की उनकी सनक से अर्थव्यवस्था चरमरा रही थी, उद्यमी लाइसेंस कोटा राज तले कराह रहे थे, कराधान की बेहद ऊंची दर (97.5 फीसदी) ने काली यानी समांतर अर्थव्यवस्था तैयार कर दी थी, जिसे मात नहीं दी जा सकी थी। जंग पर हुए खर्च ने हालत और बुरी कर दी थी। लेकिन याद रखिए कि राजनीति आंकड़ों से नहीं चलती बल्कि जनता की मंशा या 'हवा' पर चलती है।

1971 ही वह साल था, जब कवि-गीतकार गुलजार ने अपनी पहली फिल्म 'मेरे अपने' बनाई थी। फिल्म मीना कुमारी के इर्द-गिर्द घूमती थी, जो शहर में गरीब और बेसहारा बूढ़ी के तौर पर आईं और युवाओं के एक झुंड ने उन्हें सहारा दिया। युवाओं के किरदार निभाने वाले कुछ नाम आगे जाकर बहुत बड़े हो गए। उनके पास डिग्रियां थीं, सपने थे, लेकिन नौकरी नहीं थी। इसलिए उनके पास नाउम्मीद रहने, शरारत करने या सड़कों पर लड़ने के अलावा कोई और काम ही नहीं था।

मगर वे युवक खुद पर हंस सकते थे और गुलजार ने उनके लिए हताशा भरे उन दिनों का गीत भी लिखा था: 'हाल चाल ठीक ठाक है...' इसे चलाइए, पंक्तियां सुनिए। हर पंक्ति पर आप रुकेंगे और सोचेंगे कि मैं उन दिनों की बात क्यों कर रहा हूं।

नमूना देखिए: 'बीए किया है, एमए किया, लगता है वह भी ऐवेंइ किया/काम नहीं है वरना यहां, आपकी दुआ से बाकी ठीक-ठाक है...' गुलजार 2019 में भी यही लिखते। लेकिन वह इसे फिर से पेश कर सकते हैं और कह सकते हैं कि अभी लिखा है। आपको पता नहीं चलेगा।

2014 की दुनिया जीत लेने वाले आशावाद से हम इस हालत तक कैसे पहुंच गए, इस पर बात करने से पहले देखना चाहिए कि 1971 में अर्श पर उड़ रहे भारत और इंदिरा गांधी का 1974 जैसा हश्र क्यों हुआ। मार्च 1971 की अभूतपूर्व जीत और विपक्ष की दुर्गति का ऐसा नशा चढ़ा कि इंदिरा और उनके विचारधारा (वामपंथी) में पगे सलाहकार समाजवाद के जहर में डूबते ही चले गए।

उसके बाद जब भारत की अर्थव्यवस्था सबसे नाजुक दौर में थी तब दोहरी चोट लगी। पहला योम किपर युद्ध (अक्टूबर 1973) के कारण लगा तेल का झटका था, जिसे वह काबू नहीं कर सकीं। दूसरा, गेहूं के थोक व्यापार का राष्ट्रीयकरण था, जो उन्होंने 'आ बैल मुझे मार' की तरह खुद किया। उनके कम्युनिस्ट सलाहकारों ने कहा कि अगर यह सोवियत संघ में कारगर रहा तो यहां भी होगा। लेकिन यह कारगर नहीं रहा।

इसके बाद दुर्गति बढ़ती गई, गेहूं के दाम चढ़ते गए, किसानों में आक्रोश भरता गया और कारोबारी तथा निजी ग्रामीण बिचौलिये बेरोजगार हो गए। उनकी यह हरकत चीन की गौरैया के खिलाफ माओ की जंग सरीखी थी। इंदिरा ने यह फैसला वापस तो ले लिया, लेकिन तब तक बहुत देर हो चुकी थी। 1974 की आखिरी तिमाही आते-आते भारत की मुद्रास्फीति दर 34.7 फीसदी तक चढ़ गई और इंदिरा की लोकप्रियता बहुत घट गई। देश भर में विरोध, नवनिर्माण आंदोलन फूट पड़ा, जिसमें बेरोजगार युवक और गुस्साए छात्र शामिल थे। यह भी आजकल की ही बात लग रही है न?

कोई रास्ता नहीं बचा तो इंदिरा ने 'राष्ट्रवाद' का अपना पुराना पत्ता फेंका। पहले पोकरण-1 परमाणु परीक्षण (मई 1974) हुआ। उसका खुमार कुछ हफ्ते ही रहा क्योंकि लोगों की मुश्किलें बहुत बढ़ चुकी थीं। उन्होंने आखिरी पासा मई 1975 में फेंका, जब सिक्किम का विलय किया गया। लेकिन नाराज जनता पीछे हटने का तैयार नहीं थी। एक महीने बाद आपातकाल लग गया।

मैं यह नहीं कह रहा कि इस बार भी हम उसी हालत में पहुंच जाएंगे। मैं केवल इतना कह रहा हूं: यदि लोगों को लंबे समय तक बेरोजगारी और आर्थिक ठहराव झेलना पड़ता है तो राष्ट्रवाद से उनका गुस्सा शांत नहीं होता।

इसी बात पर एक बार फिर फिल्मों का रुख करते हैं क्योंकि हमें पता है कि फिल्मकार किसी भी विश्लेषक से पहले ही अपने बाजार यानी जनता की नब्ज पकड़ लेते हैं। 'मेरे अपने' के बाद 'शोर', 'रोटी कपड़ा और मकान' और गरीबी, शोषण, महंगाई (बाकी कुछ बचा तो महंगाई मार गई बड़ा हिट हुआ था) के इर्द-गिर्द बुनी गई तथा बेरोजगार नायकों वाली फिल्मों का दौर आ गया। यही आगे चलकर 'एंग्री यंग मैन' के दौर में बदल गया। लेकिन फिलहाल मैं उसकी बात नहीं कर रहा हूं।

आपको क्या लगता है? इतिहास ने खुद को दोहराना कब से शुरू किया? आपमें से कुछ को हालिया आम चुनाव से इसकी शुरुआत लग सकती है, जिसमें मिली जीत ने डगमगाती अर्थव्यवस्था के बाद भी मोदी सरकार को घमंडी बना दिया। अगर लोग अर्थव्यवस्था की इतनी बुरी गति के बाद भी हमें वोट देते हैं तो इसका मतलब है कि आपको सामाजिक-राष्ट्रवादी खुमार बनाए रखना है। आप इसमें धर्म का तड़का भी लगा सकते हैं। इसलिए अर्थव्यवस्था सुधारने में जुटने के बजाय अनुच्छेद 370 ले आओ, मंदिर की बात करो, नागरिकता संशोधन कानून ले आओ। आर्थिक आंकड़े हर तिमाही बद से बदतर होते भी जाएं तो फिक्र कैसी।

आप नरेंद्र मोदी के पहले कार्यकाल के शुरुआती दिनों को याद करें, जब 'सूट-बूट की सरकार' के साथ ही भूमि अधिग्रहण कानून पर सरकार को मुंह की खानी पड़ी थी। यह देखते ही मोदी ज्यादा राष्ट्रवाद और सामाजिक जनवाद का रास्ता पकड़कर भ्रष्टाचार से लड़ने वाले बन गए थे। नोटबंदी के जरिये उन्होंने अपने पांव पर पहली कुल्हाड़ी मारी। सीएए-एनआरसी-एनपीआर का झमेला दूसरी कुल्हाड़ी लग रहा है क्योंकि सबसे पहले तो यह देश को इस तरह बांट रहा है, जैसा दशकों में नहीं हुआ। दूसरा, इस पर दुनिया भर में सीधी आलोचना बेशक नहीं हुई हो, लेकिन निराशा तो जताई ही गई है, जिसे आप नजरअंदाज नहीं कर सकते। हम वैश्विक दुनिया में रह रहे हैं, जहां भारत के हित 1974 से काफी अलग हैं। तीसरा, इंदिरा के अच्छे दिनों के उलट अब भारत संघशासित है। आप मुख्यमंत्रियों को हुक्म नहीं दे सकते और न ही अनुच्छेद 356 का इस्तेमाल कर उन्हें बर्खास्त कर सकते हैं।

1974 वाले इस अहसास से हम कहां जाएंगे? हमें पता है कि 1975 की गर्मियों तक इंदिरा हमें कहां ले गई थीं। फैसला मोदी के हाथ है। बेशक वह उस वक्त की इंदिरा से ज्यादा लोकप्रिय और ताकतवर हैं, लेकिन भारत आज 1975 से बहुत अलग है।

अंशकालिक कर्मियों की बारी भारतीय उद्योग भी करें तैयारी

इंसानी पहलू

श्यामल मजूमदार

गिग इकनॉमी कर्मचारियों और नियोक्ता दोनों के लिए लाभदायक है। कर्मचारियों को जहां इससे लचीलापन और आजादी मिलती है, वहीं नियोक्ता की लागत कम होती है

इसे व्यापक तौर पर काम के 'उबरीफिकेशन' (मांग पर सेवा मुहैया कराना) के तौर पर जाना जाता है। तमाम अध्ययन और सर्वेक्षण यही बताते हैं कि सन 2000 के बाद पैदा हुए युवाओं में से अधिकांश अपने जीवन और कामकाज में बेहतर संतुलन कायम करने की कोशिश में अंशकालिक तौर पर और जरूरत के मुताबिक काम करने में यकीन करते हैं। कई कंपनियों का बदलता कारोबारी मॉडल भी यही सुझाता है कि बड़ी तादाद में लोगों को जरूरत के मुताबिक काम पर रखा जाएगा।

यानी यह तय है कि नए वर्ष में गिग इकनॉमी (उपरोक्त लक्षणों वाली अर्थव्यवस्था) को लेकर बात और मुखर होगी। परंतु कंपनियों का यह मानना गलत होगा कि केवल वाहन चालक, डिलिवरी बॉय या होटलों के बार आदि में काम करने वाले कर्मचारी ही गिग इकनॉमी का हिस्सा होंगे।

तकनीक आधारित काम मसलन सॉफ्टवेयर टेस्टिंग या वेब डिजाइन, या कानूनी काम अथवा अंकेक्षण का काम आदि पहले ही इस नई व्यवस्था का हिस्सा बन चुके हैं। आगे इनकी हिस्सेदारी और बढ़ेगी। नए वर्ष में और अधिक विशेषज्ञता वाले रोजगार सामने आ सकते हैं क्योंकि संस्थान कुशल श्रमिकों की आवश्यकता को पूरा करने के लिए ऐसे लोगों को तलाशेंगे क्योंकि स्थायी कर्मचारियों में ऐसे लोग नहीं हैं।

सवाल यह है कि कंपनियां इस नए माहौल से निपटने के लिए क्या कर रही हैं? क्या नियोक्ता श्रम के मॉडल में अपरिहार्य बदलाव की चुनौती से निपटने को तैयार हैं? इन दोनों सवालों का एक ही जवाब है 'बहुत कम'। यह बात चकित करती है क्योंकि अधिकांश कंपनियां और उनके एचआर पेशेवर जानते हैं कि उनके कर्मचारियों का एक बड़ा हिस्सा जल्दी ही अनुबंधित या अस्थायी कर्मचारियों से बनने वाला है। बात यह भी है कि गिग इकनॉमी कर्मचारियों और नियोक्ता दोनों के लिए लाभदायक है। कर्मचारियों को जहां इससे लचीलापन और आजादी मिलती है, वहीं नियोक्ता की लागत कम होती है। पीडब्ल्यूसी की एक रिपोर्ट के मुताबिक केवल आधी कंपनियां अंशकालिक श्रमिकों को प्रशिक्षण देती हैं और उनमें भी एक तिहाई ही उनको प्रदर्शन के आधार पर बेहतर वेतन-भत्ते प्रदान करती है। ऐसे कर्मचारियों में संबद्धता की कमी की आशंका के बीच आधे से कम नियोक्ता उन्हें आंतरिक संवाद में शामिल करते हैं या उन्हें पुरस्कृत करते हैं।

ऐसा शायद इसलिए है क्योंकि अधिकांश कंपनियां बाहरी कर्मचारियों की प्रतिबद्धता और गुणवत्ता को लेकर आश्वस्त नहीं हैं। साथ ही वे इस बात को लेकर भी निश्चित नहीं हैं कि उन्हें प्रतिभा कहां से और कैसे जुटानी है। आखिरकार, कई योग्य स्वतंत्र पेशेवरों के पास अक्सर क्लाइंट प्रतीक्षारत रहते हैं। उन्हें निपटने में कई महीनों का समय लग जाता है। ऐसे में मूल विचार यह है कि वे अपनी ब्रांडिंग इस तरह करें जिससे पता लगे कि वे गिग अर्थव्यवस्था को लेकर सकारात्मक हैं। ऐसा करने से लोग उनके साथ काम करना पसंद करेंगे।

इसके पीछे आर्थिक कारण भी है। गैलप के आंकड़ों के मुताबिक यदि शीर्ष 20 प्रतिशत प्रत्याशियों का चयन किया जाए तो मुनाफे में 21 फीसदी की उछाल आती है। यह भी कहा गया कि अस्थायी कर्मचारी भी उतने ही महत्त्वपूर्ण होते हैं जितने पूर्णकालिक कर्मचारी। एक दिक्कत यह है कि अधिकांश कंपनियां अभी भी वार्षिक या अर्द्धवार्षिक मूल्यांकन की परंपरा में विश्वास करती हैं। परंतु जो लोग कम समय के लिए काम संभालते हैं। उनके लिए वार्षिक समीक्षा शायद प्रासंगिक न हो। जबकि जरूरत नतीजे आधारित लक्ष्य तय करने की है। अंशकालिक कर्मचारियों के लिए भी प्रतिपुष्टि तीव्र होनी चाहिए। खासतौर पर उनके लिए जिनका कौशल उन्नत होता है वे यह जानना चाहते हैं कि क्लाइंट उनके काम से खुश है या नहीं। ऐसे में नेतृत्व संस्कृति में बदलाव लाकर उसे अधिक सहयोगात्मक और साझेदारी वाला बनाना होगा। दूसरा पहलू पूर्णकालिक कर्मचारियों की चिंताओं को दूर करने का है। उन्हें ऐसे अंशकालिक कर्मचारियों की भर्ती से आशंकित नहीं होना चाहिए। पूर्णकालिक कर्मचारियों की तात्कालिक प्रतिक्रिया तो प्रतिरोध की होगी। ऐसे में उन्हें इस बदलाव के बारे में अच्छी तरह बताया जाना चाहिए कि बाहरी लोग उनके स्थानापन्न बनने नहीं आ रहे हैं।

मिलीजुली श्रमशक्ति में स्थायी और अंशकालिक दोनों तरह के कर्मचारी हो सकते हैं। ये अलग-अलग जगह पर रहकर एक ही परियोजना में काम कर सकते हैं। वे अबाध रूप से काम करें यह तय करने के लिए ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए कि सभी कर्मचारी एक दूसरे से जुड़े रहें। दो तरह के कर्मचारियों के बीच पूर्ण सांस्कृतिक एकीकरण के साथ यह व्यवस्था विश्वसनीय होगी। इन्हें यथासंभव एक दूसरे के साथ जोड़े रखने का प्रयास होना चाहिए।

लब्बोलुआब यह है कि सन 2020 ऐसे ही गिग कर्मचारियों का वर्ष साबित हो सकता है। कंपनियों की बात करें तो उनके लिए भी नई कर्मचारी भर्ती व्यवस्था बेहतर होगी। अमेरिकी मानव संसाधन कंपनी मर्सर के मुताबिक गिग मॉडल में अधिक लचीलापन है, इससे तयशुदा लागत में कमी आती है और बदलाव को लेकर प्रतिक्रिया देने की क्षमता सुधरती है। इसमें एक अवसर यह भी छिपा है कि मांग के अनुसार अंतरराष्ट्रीय प्रतिभाओं और विशेषज्ञों को साथ जोड़ा जा सके। आने वाले दिनों में वही कंपनियां सफल होंगी जिनके पास मांग और जरूरत के अनुसार गिग कर्मियों को साथ जोड़ने की क्षमता होगी।

कानाफूसी

राजद का सुरक्षित ठिकाना

बिहार के पूर्व मुख्यमंत्री लालू प्रसाद को वर्ष 2013 में केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो (सीबीआई) की एक विशेष अदालत ने मवेशियों के चारे की खरीद तथा वितरण के लिए आवंटित धन के गबन से जुड़े एक मामले में दोषी ठहराया था। इसमें बिहार के विभिन्न स्थानों से पैसे निकालने के अलग-अलग मामले दर्ज किए गए थे और अंत में सीबीआई अदालत ने उन्हें लगभग 14 साल की जेल की सजा सुनाई थी। लेकिन इस मामले में एक रोचक मोड़ है। फिलहाल वह रांची जेल में हैं। पिछले पांच वर्षों तक राज्य में रघुबर दास के नेतृत्व वाली भारतीय जनता पार्टी की सरकार थी और इस दौरान राज्य के अधिकारियों से उन्हें 'अपेक्षित तवज्जो' नहीं मिली। लेकिन पहले, जब हेमंत सोरेन मुख्यमंत्री थे तो उन्हें जेल से सरकारी अतिथि गृह में भेज दिया गया था जहां उन्हें सभी सुविधाएं मुहैया कराई गई थीं। अब एक बार फिर सोरेन मुख्यमंत्री बन चुके हैं। शायद ही किसी को अचरज हुआ हो, जब लालू ने सोरेन को चुनाव जीतने की गर्मजोशी से बधाई दी और भाजपा के भविष्य को लेकर गंभीर भविष्यवाणी की थी। इन चुनावों में लालू की पार्टी राजद और सोरेन के झारखंड मुक्ति मोर्चा के बीच गठबंधन हुआ और इस बात की काफी संभावना है कि जेल से जुड़ा विभाग राजद के पास जाए। अगर ऐसा नहीं होता है तो भी राजद कोई बेहतर उपाय खोज लेगा। इससे, बिहार में होने वाले आगामी विधानसभा चुनाव में पार्टी की रणनीति पर चर्चा तथा राय के लिए लालू प्रसाद की राजनीतिक विशेषज्ञता आसानी से उपलब्ध होगी। यह सब इस बात पर भी निर्भर करता है कि यह कदम कितनी जल्दी उठाया जाता है और लालू प्रसाद को 'तरजीह' दिए जाने पर कोई अदालत का दरवाजा तो नहीं खटखटाता है।

आपका पक्ष

जल संरक्षण की नई अटल योजना

केंद्र सरकार ने पिछले दिनों पूर्व प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी के 95वें जन्मदिन पर अटल भूजल योजना का शुभारंभ किया। इसका उद्देश्य गिरते भूजल का स्तर रोकना और जल संरक्षण करना है। सरकार का यह कदम स्वागत योग्य है कि उसने गिरते भूजल स्तर और पानी की कमी को दूर करने के लिए सही समय पर कदम उठाया है। इस योजना को जमीन पर लाने के लिए सरकार को पर्याप्त समय मिलेगा जिससे पानी को संरक्षित किया जा सकेगा। इसके लिए कई दिशानिर्देश मिलेंगे जिनसे जल संरक्षण किया जा सके। इनमें मुख्य रूप से सूक्ष्म सिंचाई, पेयजल के लिए नई तकनीक का उपयोग कर पानी को शुद्ध करना आदि है। हमें पानी की बरबादी को कम करना है। इसके लिए शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों में घर से निकलने वाले पानी को आंगन में गड्ढा बनाकर डालना चाहिए। इससे नालियों से बहने वाला गंदा पानी का जल संरक्षण में इस्तेमाल

प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने 25 दिसंबर को अटल भूजल योजना का शुभारंभ किया

हो सकेगा जिससे भूजल स्तर में बढ़ोतरी होगी। पहाड़ी क्षेत्रों में ढलान पर गड्ढे बनाए जाएं जो मनरेगा के तहत बनाए जा सकते हैं। इससे रोजगार भी मिलेगा और ढलानों से बहने वाले पानी का संचयन हो सकेगा। इस कदम से बंजर जमीन पर कृषि के लिए पानी उपलब्ध होगा। घरों के नलों में आने वाला पानी बहुत अधिक बरबाद होता है। इसके लिए ग्रामीण क्षेत्रों में बिजली की तरह पानी का मीटर लगाने चाहिए जिससे पानी की बचत की आदत पड़ेगी।

रविंद्र कुमरावत, खरगोन

कृषि का राष्ट्रीयकरण

देश में बार-बार की कर्जमाफी, मुआवजे की मांग आदि के दुष्चक्र को तोड़ने तथा कृषि को लाभ का व्यवसाय बनाने के लिए कृषि का राष्ट्रीयकरण किया जाना चाहिए। इससे रोजगार के अवसर, घरेलू सकल उत्पाद बढ़ने के साथ कृषि व कृषक दोनों की दुर्दशा भी समाप्त होगी, जो इतना कुछ करने के बाद भी खत्म नहीं हो रही है।

श्याम शालिग्राम शर्मा, इंदौर

आज भी दूसरों देशों पर निर्भर भारत

देश की 50 प्रतिशत आबादी शिक्षित नहीं है क्योंकि उसके पास पैसे का अभाव होता है। इस वजह से विज्ञान में हमारे वैज्ञानिकों के हाथ दूसरे देशों के मुकाबले तंग है। इससे देश में वैज्ञानिक खोज काफी कम हो पाती है। नई तकनीक के लिए हम दूसरे देशों पर निर्भर रहते हैं। हम फ्रांस से लड़ाकू विमान राफेल खरीदते हैं। रूस के साथ मिलकर उनकी तकनीक के सहारे राइफल बनाने का कारखाना स्थापित करते हैं। कृषि उन्नति के लिए जर्मनी के साथ कृषि तकनीक के लिए समझौता करते हैं। दो दशक पहले राकेश शर्मा को अंतरिक्ष भेजना भी दूसरे देशों की मदद के कारण ही संभव हो सका था। दूसरे देशों पर निर्भरता के कारण पाकिस्तान और चीन को शांत नहीं करा पाना भी एक समस्या है। देश में कई बच्चे अपने परिवार के साथ भूखे सोते हैं। ऐसे में उनका स्वास्थ्य कैसे ठीक रहेगा। ऐसे परिवारों के पास डॉक्टर के पास जाने तक की फीस नहीं होती है। अशिक्षित होने के कारण उन्हें उचित काम भी नहीं मिल पाता है जिससे कम आमदनी के कारण वे जैसे तैसे अपना जीवन गुजर बरस करते हैं। भारत आज भी दूसरे देशों पर निर्भर है और इस निर्भरता को खत्म करने की दिशा में प्रयास होने चाहिए।

राकेश जैन, सतना

पाठक अपनी राय हमें इस पते पर भेज सकते हैं : संपादक, बिजनेस स्टैंडर्ड, 4, बहादुर शाह जफर मार्ग, नई दिल्ली - 110002. आप हमें ईमेल भी कर सकते हैं : lettershindi@bsmail.in पत्र/ईमेल में अपना डाक पता और टेलीफोन नंबर अवश्य लिखें।